स्वामी विवेकानन्द

विनोद

स्वामी विवेकानन्द

विनोद

शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली

₹ 25/-

संस्करण : [redacted] © प्रकाशक

शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशि

SWAMI VIVEKANAND (Biography), by Vinod

स्वामी विवेकानन्द

भारत के आध्यात्मिक आदर्शों को विश्व-भर में प्रकाशित करने का सबसे अग्रणी काम स्वामी विवेकानन्द ने ही किया था, इसलिए उनका यश भारत की सीमाओं में ही नहीं, विश्व-भर में फैला हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने आज के युग की भाषा में भारत के प्राचीन ऋषियों के ज्ञान को संसार के सामने रखा था। इससे पूर्व पश्चिम के विचारकों को भारत के अतीत गौरव और उसके ऊंचे आध्यात्मिक आदर्शों का कोई ज्ञान नहीं था। स्वामी विवेकानन्द ने उनकी आंखें खोल दीं। भारत के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द का नाम अमर रहेगा।

ईस्वी सन् 1893 की शिकागो की सर्वधर्म-परिषद् से पहले स्वामी विवेकानन्द के नाम से बहुत कम लोग परिचित थे। इस परिषद् की पहली बैठक में ही आपका यश अचानक सूर्य की तरह एक ही दिन में सब जगह फैल गया। संसार के विचारक उनके पूर्व-जीवन की घटनाओं को जानने के लिए उत्सुक हो गए।

स्वामीजी एक ही दिन में अकस्मात् इतने प्रभावशाली नहीं हो गए थे । स्वामी विवेकानन्द का यश वर्षों की कठिन साधना का परिणाम था । यहां हम उनके यशस्वी जीवन की कुछ घटनाएं देते हैं, जिससे उनकी सफलता का रहस्य स्पष्ट हो जाएगा ।

बाल जीवन

स्वामीजी के पिता श्री विश्वनाथदत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के सफल वकील थे । वकालत में पर्याप्त धन मिलता था, किसी बात की कमी नहीं थी । आप अतिथि-सेवा में आनन्द लेते थे । घर में हर समय अतिथियों का आना-जाना लगा रहता था ।

स्वामीजी की माता भुवनेश्वरीदेवी की दो सन्तानें थी, किन्तु दोनों पुत्रियां थीं । पुत्र की कामना से उनकी माता ने देवी-देवताओं का बहुत पूजन किया । ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली । इतनी साधनाओं के बाद जिस बालक का जन्म हुआ, वही बाद में विवेकानन्द कहलाया ।

ईस्वी सन् 1863 की 12 जनवरी को सुबह 6 बजे उनका जन्म हुआ था । उनका नाम नरेन्द्र रखा गया । किन्तु माता उन्हें सदा विश्वेश्वर नाम से पुकारती थीं । माता उन्हें विश्वेश्वर नाम से इसलिए बुलाती थीं कि उन्हें विश्वेश्वर भगवान की अपार दया से यह

बालक प्राप्त हुआ था। इसके लिए उन्होंने भगवान का बहुत पूजन-आराधन किया था।

बचपन में नरेन्द्र बहुत नटखट बालक था। बालकों पर प्रभुत्व जमाने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती थी। उसे घोड़ागाड़ी की सवारी का बहुत शौक था। घोड़ों से भी प्रेम था। एक दिन पिताजी ने पूछा—

"नरेन्द्र, बड़ा होकर तू क्या करेगा?"

नरेन्द्र ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"बड़ा होकर साईस बनूंगा या गाड़ीवाला कोचवान।"

नरेन्द्र के घर में पूजा-पाठ चलता ही रहता था। माताजी को पुराण, रामायण, महाभारत की कथा सुनना अच्छा लगता था। कथावाचक आते रहते थे। नरेन्द्र भी बड़े ध्यान से इन कथाओं को सुना करता था। ये कथाएं उसे कंठस्थ-सी हो गई थीं। एक दिन उसने कथावाचक से सुना कि हनुमान कदलीवन में रहते थे और वे अमर थे। इस पर बालक नरेन्द्र के मन में अमर हनुमान जी के दर्शनों की इच्छा जागृत हो गई। उसी रात नरेन्द्र केलों की झाड़ में हनुमान जी की प्रतीक्षा में बैठा रहा। आधी रात तक बैठने के बाद भी जब हनुमान जी के दर्शन न हुए तो उसे बड़ी निराशा हुई।

पांच की वर्ष अवस्था में ही नरेन्द्र को पाठशाला भेज दिया गया। पाठशाला का नाम था "मेट्रोपोलिटन

इन्स्टीट्यूट'।

बचपन से ही आप निर्भय थे। आपकी आयु छः वर्ष के लगभग थी। एक मेले से आप घर लौट रहे थे। आपके सामने एक बालक घोड़ागाड़ी के नीचे आने लगा था। आपने उसे अपनी जान पर खेलकर बचा लिया। माताजी भुवनेश्वरीदेवी को जब यह घटना मालूम हुई तो उन्हें अपार आनन्द हुआ।

नरेन्द्र के घर के सामने उसके एक मित्र का घर था। उसके आंगन में चम्पा का वृक्ष था। बच्चे उस वृक्ष पर झूला डालना चाहते थे। लेकिन चम्पा के वृक्ष की डालियां मजबूत नहीं होतीं, इसलिए बच्चों को झूला डालने से रोका गया। फिर भी वे न माने। तब घर के मालिक ने उन्हें यह कहा कि इस वृक्ष पर ब्रह्मराक्षस रहता था। ब्रह्मराक्षस के नाम से बालक डर गए। नरेन्द्र को भी ब्रह्मराक्षस से डराया गया। लेकिन नरेन्द्र नहीं डरा। वह उस वृक्ष पर चढ़ गया और अपने साथियों से बोला—"ब्रह्मराक्षस होता तो मुझे खा न जाता। यह तो केवल हमें डराने को झूठी बात बनाई गई है।"

नरेन्द्र अपनी कक्षा में बहुत होशियार बालक नहीं था। पुस्तक-ज्ञान की ओर उसकी रुचि नहीं थी। थोड़ी देर पाठशाला में बैठने के बाद वह सारा दिन खेल-कूद में बिता देता था। पाठशाला के पास बालकों

जिन्न और भूत की असत्यता प्रमाणित करने पेड़ पर चढ़ गए

ने एक अखाड़ा खोला था, उसमें कुश्तियां होती थीं। नरेन्द्र को भी व्यायाम में रुचि थी। नियमित रूप से उसने व्यायाम करना शुरू कर दिया। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द का शारीरिक गठन आदर्श था।

सन् 1879 में बालक नरेन्द्र ने स्कूल की शिक्षा समाप्त कर ली। मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

मंत्र दीक्षा

ईस्वी सन् 1879 में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद नरेन्द्रनाथ कालेज में दाखिल हुए। कालेज में रहकर आपने इतिहास, साहित्य, दर्शन आदि पाठ्य-ग्रन्थों का पारायण कर लिया। उनकी प्रखर प्रतिभा, सुन्दर शरीर और बातचीत के आकर्षक ढंग ने उन्हें समस्त कालेज में लोकप्रिय बना दिया था।

धर्म की मीमांसा मन में बचपन से ही थी। ईश्वर के रूप-गुण, अस्तित्व-नास्तित्व आदि की चर्चा आप अपने कालेज-काल के मित्र डा० ब्रजेन्द्रनाथ से प्रायः किया करते थे। एक दिन दर्शन पर बातचीत करते हुए आपने ईश्वर के सच्चे स्वरूप को देखने की उत्कट इच्छा प्रकट की। उन दिनों कलकत्ता शहर में ब्रह्म-समाज पूरे जोश पर था। उस समाज में भी अनेक वर्ग थे। श्री केशवचन्द्र सेन का भाषण सुनने के बाद

आपका विचार उनके वर्ग में जाने को उत्सुक हो गया था। इच्छा हुई, केशवचन्द्र द्वारा स्थापित नवीन ब्रह्म-समाज में जाने की। वहां महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भी आपने उपदेश सुने।

इतने पर भी उनका मन शान्त नहीं हुआ। आपने केशवचन्द्र द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज में योग दिया। किन्तु, किसी स्थान पर भी आपकी ईश्वर-विषयक जिज्ञासा शांत नहीं हुई। जो भी ईश्वर के अस्तित्व का विश्वास दिलाता, उससे आप यही पूछते थे—"आपने ईश्वर को देखा है ?"

नरेन्द्र सभी धर्मगुरुओं के पास हो आए और सब से यही पूछा।

युवक के इस प्रश्न के उत्तर में कोई हंस देता और कोई उसकी नादानी पर दुख प्रकट करता, किन्तु युवक का मन इस प्रश्न का समाधान पाने के लिए दिन प्रतिदिन चंचल होता जाता था।

अन्त में युवक नरेन्द्र को एक गुरु ऐसा मिल गया जिसने उसकी शंका का सन्तोषजनक समाधान कर दिया। उनका नाम था श्रीरामकृष्ण परमहंस देव। परमहंस एक दिन नरेन्द्र के पड़ोसवाले घर में अतिथि बनकर आए थे। नरेन्द्र ने परमहंस का नाम सुना था। उनसे भेंट करने के लिए वह पड़ोसी के मकान पर गया। वहां उसने एक ईश्वर-स्तुति का भजन

सुनाया। परमहंस उसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर आने का निमन्त्रण दिया।

नरेन्द्र उस समय कालेज में पढ़ते थे। परीक्षा की तैयारियां हो रही थीं, इसलिए वे इस निमन्त्रण की बात भूल गए। किन्तु कालेज की प्रथम वर्ष की परीक्षा के बाद अपने पिता श्री विश्वनाथ बाबू के एक पुराने मित्र डा० रामचन्द्रदत्त के साथ आप दक्षिणेश्वर जाकर श्री रामकृष्ण परमहंस से भेंट करने गए।

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण नरेन्द्रनाथ से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे एकान्त में बुलाकर उससे बहुत स्नेहपूर्वक कहा—

"तू मुझ से मिलने का वचन देकर भूल गया, किन्तु मैं तो यहां प्रतिदिन तेरी राह देखता रहा। संसारी लोगों से बातें करते-करते मेरी आत्मा बहुत दु:खी हो गई। आज तेरे सदृश त्यागी पुरुष से भेंट करते हुए मेरी आत्मा को अपार आनन्द हो रहा है।"

यह कहते-कहते उनकी आंखों से स्नेह के आंसुओं की धारा बह चली। नरेन्द्र भी आश्चर्य से परमहंस की ओर देखता ही रह गया, कोई उत्तर न दे सका। परमहंस फिर कहने लगे—"तू कोई साधारण मनुष्य नहीं है। भगवान ने तुझे मानव-जाति के कल्याण के लिए भेजा है। मुझे मालूम है, तू भगवान का वरद

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उपदेश प्राप्त करते हुए

पुत्र है ! तेरे हाथों जगत् का कल्याण होने वाला है। मुझे इसका ज्ञान है, तुझे नहीं।"

घर आकर परमहंस के शब्द नरेन्द्र की आत्मा में गूंजते रहे। उसके मन में यह शंका उठी कि परमहंस की उक्ति में कोई सार नहीं, उन्होंने जो मन में आया बिना विचारे कह दिया। किन्तु उसे ध्यान आया कि परमहंस जी इतने अविचारी नहीं हैं। ऐसा ही हो तो केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और विजय गोस्वामी आदि विचारक उन्हें पूजा व भक्ति की दृष्टि से क्यों देखें ? सभी लोगों की दृष्टि में परमहंस जी अध्यात्म के विद्या-शिखर पर पहुंचे हुए महात्मा थे।

नरेन्द्र ने भी दक्षिणेश्वर जाकर उनसे उपदेश लेना प्रारम्भ कर दिया। नरेन्द्र के हृदय में परमहंस के प्रति भक्ति-भाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

एक दिन परमहंस से भी नरेन्द्र ने पूछ लिया—

"भगवन् ! आपने ईश्वर को देखा है ?"

परमहंस ने हंसकर उत्तर दिया—"हां, मैंने ईश्वर को देखा है। जिस तरह तू अपनी आंख से सबको स्पष्ट रीति से देखता है, उसी तरह मैंने अपनी आंखों से भगवान को देखा है।"

इतनी कठिन बात को इतनी सरल रीति से कहने की योग्यता परमहंस में ही थी। अपने अनुभव के

आधार पर ही कोई ऐसी बात कह सकता था । नरेन्द्र-नाथ परमहंस की इस सरलता पर मुग्ध हो गए । कुछ देर तक वे इस वाक्य की थाह पाते हुए अवाक्-से खड़े रहे । तब परमहंस ने बड़े स्नेह से नरेन्द्र की ओर देखते हुए कहा—"यदि तू मेरे कहने के अनुसार आचरण करे तो तुझे भी ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ।"

नरेन्द्र ने उसी दिन परमहंस को गुरु मान लिया । उसका जीवन अध्यात्म की नई धारा में बहने लगा । परमहंस के कथनानुसार भजन-साधन करते-करते उसे विश्वास होने लगा कि एक दिन उसे ईश्वर के दर्शन अवश्य होंगे । गुरु परमहंस भी नरेन्द्र के स्नेह में डूब गए । उन्हें इस शिष्य के प्रति अगाध प्रेम था । अपने शिष्यों से वे परोक्ष में कहा करते थे—

"नरेन्द्र तो नारायण है । उसके हृदय, मन, प्राण बहुत निर्मल हैं ।"

किसी कारण नरेन्द्र यदि कुछ दिन परमहंस के दर्शन को नहीं जा पाता था, तो परमहंस स्वयं उससे मिलने कलकत्ता आ जाया करते । इन्हीं दिनों नरेन्द्र के पिताजी की मृत्यु हो गई ।

पिता के स्वर्गवास के बाद विधवा माता और दो छोटे भाइयों के रक्षण, भरण-पोषण का भार नरेन्द्र के कन्धों पर पड़ा । नरेन्द्र उन दिनों बी० ए० की परीक्षा

में बैठा था। भाइयों के भरण-पोषण के लिए नौकरी की तलाश की, किन्तु सन्तोषजनक नौकरी नहीं मिली। इससे नरेन्द्र को बहुत दुःख हुआ। भगवान पर क्रोध भी आया। नरेन्द्र ने सोचा, भगवान को दयालु कहना व्यर्थ है। उसके दिल में दया हो तो वह उसे इतने कष्ट कभी न दे। इन्हीं शंकाओं में डूबा हुआ नरेन्द्र फिर गुरु की शरण में गया और गुरुजी से विनती की—"आप मेरे लिए काली माता से वरदान मांगें कि मेरा आर्थिक कष्ट दूर हो जाए।"

परमहंस ने कहा—"माता से जो मांगना है तू स्वयं निःसंकोच मांग ले, वह तेरे दुःखों को जानती है।"

वहां से नरेन्द्र मन्दिर में गए और अपने लिए धन की भिक्षा मांगने के स्थान पर यह मांग आए—"देवी, मुझे ऐसी बुद्धि और भक्ति दे कि तेरे दर्शन कर सकूं।"

इन दिनों नरेन्द्र की इच्छा हुई कि वह संन्यास ले और पर्वत की गुफा में जाकर तब तक तपस्या करे जब तक ईश्वर का साक्षात् दर्शन न हो जाए।

नरेन्द्र ने यह इच्छा परमहंस के सामने प्रकट की तो उन्होंने कहा—"नरेन्द्र, तु स्वार्थी मनुष्यों की तरह केवल अपनी मुक्ति की इच्छा कर रहा है! संसार में लाखों मनुष्य दुखी हैं। उनका दुःख दूर करने तू नहीं जाएगा तो कौन जाएगा?"

परमहंस ने यह भी कहा—"संसार में जितने मत हैं, उतने ही पंथ हैं। सब धर्म अपने-अपने मार्ग को सच्चा बतलाते हैं। सच्चाई यह है कि सभी धर्म सच्चे हैं। किसी भी धर्म-विहित आदर्श पर आचरण करने से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। सभी धर्म एक ही आदर्श का प्रतिपादन करते हैं। संसार वाले इस बात को नहीं समझते इसीलिए उनमें कलह होता है। मैं चाहता हूं कि तू संसार में जाकर सबको यह ज्ञान दे कि सब धर्म एक समान सच्चे हैं। किसी धर्म को तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।"

पहले नरेन्द्रनाथ को ऐसा प्रतीत हुआ कि परमहंस का यह संदेश संसार को सुनाना बहुत कठिन काम है। नरेन्द्र ने सोचा, वह एक साधारण-सा मनुष्य है। तप और ज्ञान का कोई विशेष बल उसके पास नहीं है। तब उसकी बात पर ध्यान ही कौन देगा ? किन्तु गुरुजी के बल पर उसने यह प्रण कर लिया और इसे ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया।

नरेन्द्र की प्रबल इच्छा थी कि वह समाधि का अनुभव करे। परमहंस बहुत बार समाधिस्थ हो जाते थे। नरेन्द्र उनसे समाधि का अनुभव लेने की इच्छा प्रकट करता था। परमहंस उसके प्रश्न को भविष्य के लिए टाल देते थे।

परमहंस की समाधि-अवस्था की चर्चा करते हुए

उनके भक्त श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त ने अनुभव की एक बात अपने संस्मरण में इस प्रकार लिखी है—

"यह ईस्वी सन् 1881 की घटना है। मैं केशवचन्द्र सेन तथा अन्य कई मित्रों के साथ परमहंस जी से भेंट करने गया। हमारी प्रार्थना पर परमहंस जी एक दिन समीप की नदी में ठहरी नाव पर स्वयं पधारे। वह नाव केशवचन्द्र के दामाद व कूचबिहार के महाराज नृपेन्द्रनारायण के पुत्र की थी। वहां भगवान के रूप के विषय में केशवचन्द्र जी और परमहंस जी में वार्तालाप होता रहा। तब परमहंस भगवान के निराकार होने का समर्थन कर रहे थे। बातचीत के दौरान उन्होंने 'निराकार, निराकार, निराकार' शब्द को तीन बार दोहराया और समाधिस्थ हो गए। समाधि की अवस्था में उनके होंठों पर मुस्कराहट की रेखा खिंच गई थी और सारा शरीर निष्कम्प हो गया था। आंखें अर्धनिमीलित रह गई थीं, आधी बन्द पलकों में से निश्चल पुतली स्पष्ट दिखलाई देती थी। चेहरे पर दिव्य आभा झलक उठी थी। कुछ क्षण हम सब मंत्र-मुग्ध-से होकर उनकी समाधि देखते रहे। बाद में त्रिलोकनाथ सान्याल ने भक्ति का गीत गाया। गीत के अन्त में परमहंस जी की मुद्रा भंग हुई। उन्होंने धीरे-धीरे आंखें खोलीं।"

परमहंस की चर्चा सुनकर नरेन्द्र ने भी समाधि

अवस्था प्राप्त करने की प्रार्थना की। परमहंस ने कहा—"यह अनुभव तुम्हारे लिए कठिन है। तुम्हारी प्रकृति राजसी है, सात्विक नहीं। राजसी प्रकृति वालों को कर्म करने में ही सन्तोष मानना चाहिए। समाधिस्थ होना सात्विक प्रकृति वाले मनुष्यों को शोभा देता है।"

किन्तु नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) गुरुजी की इस उक्ति से निरुत्साहित नहीं हुए। वे समाधिस्थ होने का आग्रह करते ही रहे। तब परमहंस ने कहा—"अच्छा, मैं तुझे समाधि का अनुभव अवश्य दूंगा।" यह कहते ही विवेकानन्दजी पूर्ण समाधि में डूब गए। उनकी समाधि तब तक भंग न हुई जब तक परमहंस ने स्वयं उन्हें समाधि से नहीं जगाया।

कुछ दिन बाद नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्ण परमहंस से संन्यास की दीक्षा ले ली। नरेन्द्र के मित्रों और सम्बन्धियों ने उसे इस मार्ग पर चलने से बहुत रोका, किन्तु नरेन्द्र अपने प्रण पर अटल रहा।

संन्यास लेने के बाद भी परमहंस ने स्वामी विवेकानन्द को यही उपदेश दिया था—"संन्यास का उद्देश्य मुक्त होकर लोक-सेवा करना है। अपने ही मोक्ष की चिन्ता करने वाला मनुष्य स्वार्थी होता है। लाखों लोग दु:खों के बन्धनों में जकड़े हुए हैं। उन्हें दु:खों से मुक्ति देना ही संन्यासी का सच्चा कर्तव्य है,

यही उसका मोक्ष है। साधारण साधु-संन्यासियों की तरह एकान्त में भगवान का भजन करने में अपने मूल्यवान् जीवन को नष्ट मत करना। भगवान के दर्शन करने हों तो भगवान के पुत्र मनुष्य-मात्र की सेवा करना। इस सेवा से सन्तुष्ट होकर ही भगवान तुझे दर्शन देंगे।"

ईस्वी सन् 1886 में श्रीरामकृष्ण परमहंस का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद स्वामी विवेकानन्द भी कलकत्ता के उत्तर में स्थित बरादनगर के आश्रम में जाकर निवास करने लगे। वहां उन्होंने धार्मिक ग्रन्थों और दर्शनशास्त्र का दो वर्ष तक अभ्यास किया।

स्वदेश–यात्रा

दो वर्ष तक शास्त्रों का अभ्यास तथा तपस्या करने के बाद स्वामीजी समस्त देश की यात्रा के लिए चल पड़े। पहले आप बिहार गए। बिहार में भ्रमण करते हुए आपको एक दिन अंग्रेज़ सरकार की पुलिस ने पकड़ लिया था। बात यह थी कि उन दिनों बिहार के गांवों में आम्रवृक्षों पर केसर का तिलक लगाने की प्रथा चल पड़ी थी। अंग्रेज़ अफसरों ने इस केसर-तिलक को राजद्रोहियों का कोई गुप्त चिन्ह समझा। उन दिनों बंगाल व बिहार के राजद्रोहियों से

सरकार बहुत भयभीत थी। 1857 के विप्लव से पूर्व भी विप्लवकारियों ने कुछ संकेतों द्वारा विप्लव की सूचना अपने साथियों को ऐसे ही दी थी। अतः केसर के संकेत को भी विप्लव की पूर्वसूचना समझकर सरकार संकेत की छाप लगाने वाले की खोज कर रही थी, किन्तु बहुत छानबीन के बाद भी सरकार को कोई अभियुक्त नहीं मिल रहा था।

किसी ने अंग्रेज़ अफसरों को यह सुझाव दिया कि यह काम देश-भर में निरुद्देश्य घूमनेवाले साधुओं का है। विप्लववादी भी साधु-वेश में घूम-घूमकर आम्र-वृक्षों पर यह संकेत अंकित कर रहे हैं। इस सुझाव का परिणाम यह हुआ कि बिहार-भर के साधुओं को पकड़कर पूछताछ शुरू हो गई।

स्वामीजी उन दिनों संन्यासी थे। साधुवेश में वे भी बिहार का परिभ्रमण कर रहे थे। एक दिन वे एक गांव में जा रहे थे कि पीछे से एक घुड़सवार सिपाही ने ललकारा। उनसे पूछा गया—"आप कौन हैं?" तो आपने कहा—"मैं विवेकानन्द हूं।" सिपाही एक खां साहब थे, उन्होंने विवेकानन्द का नाम नहीं सुना था, ललकारकर बोले—"विवेकानन्द कौन ?"

स्वामीजी ने कहा—"मैं एक साधु हूं।"

साधु शब्द सुनकर खां साहब का पारा चढ़ गया, गुर्राकर बोले—

"सब साधु बदमाश होते हैं। तुम मेरे साथ कोतवाली तक चलो। जेल की हवा खाकर तुम्हें साधु बनने का मजा मिल जाएगा। तुम्हें जेल में रहना होगा।"

"कितने दिन ?" स्वामीजी ने शान्ति से पूछा।

"पन्द्रह दिन, एक महीना, जितने दिन हम चाहेंगे ?"

स्वामीजी खां साहब के पास गए और बड़ी नम्रता से प्रार्थना-भरे शब्दों में कहा—"खां साहब! क्या आप मुझे छः महीने की कैद नहीं दे सकते ? छः नहीं तो चार या कम से कम तीन महीने की तो दे ही डालिए।"

खां साहब बड़े चकराए। अचम्भे में भरकर उन्होंने पूछा—"तुम एक महीने से अधिक समय के लिए जेल में क्यों रहना चाहते हो ?"

"इसलिए कि जेल का जीवन यहां के जीवन से अधिक आराम का है। यहां तो सुबह से शाम तक चलते-चलते थक जाता हूं। जेल की मेहनत इतनी कड़ी नहीं है। यहां तो सुबह-शाम भोजन की भी निश्चितता नहीं, कभी मिलता है, कभी नहीं मिलता। आप मुझे जेल में डालकर सचमुच बड़ा उपकार करेंगे।

स्वामीजी की बात सुनकर खां साहब समझ गए कि ऐसा लापरवाह आदमी विप्लववादी नहीं हो सकता। स्वामीजी को मुक्त कर दिया गया।

उन दिनों स्वामीजी ने एक कठिन व्रत लिया था। वह यह कि वे सीधे चलते जाएंगे, कभी मुड़कर पीछे नहीं देखेंगे, किसी से भिक्षा नहीं मांगेंगे और भोजन के लिए जब कोई स्वयं कहेगा, तभी उससे ग्रहण करेंगे। इस कठिन व्रत का परिणाम यह था कि कई दिन बिना अन्न ग्रहण किए बीत जाते थे।

एक दिन शाम को आप एक आदमी की घुड़साल के सामने से गुज़र रहे थे। रास्ते पर एक साईस खड़ा था। पिछले दो दिनों से स्वामीजी ने अन्न ग्रहण नहीं किया था, चेहरे पर भूख की रेखाएं स्पष्ट खिच आई थीं। साईस ने उन्हें नमस्कार करके पूछा—"साधु बाबा, आज खाना नहीं मिला क्या ?"

स्वामीजी ने सरलता से उत्तर दिया—"नहीं, दो दिन से नहीं।"

तब साईस उन्हें अपने साथ अन्दर लिवा ले गया और वहां उसने अपने भाग की सूखी रोटियां खाने को दीं। साथ में थोड़ी-सी मिरच की चटनी थी। दो दिन निराहार रहने के बाद पेट में जब सूखी रोटियां और मिरचें गई तो पेट की अंतड़ियों में भयंकर दर्द उठा। साईस घबरा गया। किन्तु उसी समय नज़दीक से एक तरबूज़ वाला गुजरा। तरबूज़वाले ने तरबूज़ की दो फांके भेंट कीं। तरबूज़ के पानी ने पेट-दर्द को ठण्डा कर दिया, मिरचों की जलन शांत हो गई।

बिहार से चलकर आप उत्तर प्रदेश के कई शहरों में गए। काशी पहुंचकर उन्हें अनुभव हुआ कि यहां भारतीय शास्त्रों का अध्ययन किया जा सकता है। काशी में प्रख्यात तैलंग स्वामी श्री भास्करानन्द और पण्डित भूदेव मुखोपाध्याय के साथ आप कुछ दिन शास्त्र-चर्चा करते रहे। काशी भारतीय संस्कृति का केन्द्र है। यहां श्री विश्वनाथ मन्दिर में भोग चढ़ाने के लिए भारत के गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, मद्रास व बंगाल, सभी प्रान्तों से भक्तजन आते हैं। भारतीय हृदय का यहां सच्चा दिग्दर्शन होता है। स्वामी विवेकानन्द को काशी के प्रवास ने समस्त भारत की विचारधाराओं से परिचित करा दिया। इससे आपका दृष्टिकोण विशाल हो गया।

काशी से प्रयाग, अयोध्या, आगरा आदि ऐतिहासिक स्थानों का भी आपने परिभ्रमण किया। उतर प्रदेश के बाद आपने राजस्थान की रियासतों का भ्रमण किया। अलवर राज्य के दीवान से भेंट होने पर उसने स्वामीजी को अलवर पधारने का निमन्त्रण दिया।

दीवान के कहने पर अलवर के राजा ने स्वामीजी को महलों में बुलाया और पूछा—

"स्वामीजी ! आप इतने विद्वान् हैं, चाहें तो मन माना धन कमा सकते है, तब भिक्षा क्यों मांगते हैं ? अपने पुरुषार्थ से आप अपनी गुजर कर सकते हैं, दूसरों के

सामने हाथ पसारने से मनुष्य दीन हो जाता है।"

स्वामीजी ने कहा—"पहले आप भी मेरे एक प्रश्न का उतर दीजिए। राजा होते हुए भी आप राज्य-कार्य में ध्यान नहीं देते। दिन-भर साहब लोगों के साथ शिकार खेलने व अन्य आमोद-प्रमोद में समय क्यों नष्ट करते हैं ?"

अलवर-नरेश ने उत्तर दिया—"मैं राजा हूं, जो मन में आता है, करता हूं।"

स्वामीजी ने कहा—"मैं अपने मन का मालिक हूं, जो मन में आता है, करता हूं।"

यह बात तो स्वामीजी ने विनोद की रीति से कही थी। किन्तु सच्चाई यह थी कि वे भिक्षा मांगने को किसी के सामने हाथ पसारते ही नहीं थे। दिन-भर लोक-सेवा करते थे और जो कुछ भक्त लोग स्वयं दे जाते उसी में सन्तुष्ट रहते।

अलवर राज्य में बहुत धर्मोपदेश करने के बाद आपने राजपूताना तथा गुजरात के कई तीर्थों का भ्रमण किया। इसी भ्रमण के बीच अहमदाबाद में पहुंचे। वहां स्वर्गवासी जज लालशंकर उभियाशंकर के घर अतिथि रहे। अहमदाबाद से आप लिंबड़ी गए। लिंबड़ी के ठाकुर साहब ने स्वामीजी का खूब सत्कार किया। ठाकुर साहब की वेदान्त में रुचि थी। आप स्वामीजी के शिष्य बन गए। वहां से जूनागढ़, भावनगर आदि

रियासतों में गए। जूनागढ़ में दीवान साहब स्व० हरिदास विहारीदास के अतिथि बने। दीवानजी आप के भक्त बन गए। रियासत के अन्य अधिकारी भी रोज़ शाम को स्वामीजी के दर्शन को जाते थे। जूनागढ़ से आप वैरावल, सोमनाथ और पाटन भी गए। पाटन से पोरबंदर पहुंचे। पोरबंदर में श्री शंकर पाण्डुरंग जी से भी आपने वेदांत की कुछ शिक्षा ली, पाण्डुरंग जी ने कहा कि यदि आप यूरोप व अमेरिका जाएं तो विद्वत्ता का सम्मान हो सकता है।

पोरबंदर से स्वामीजी द्वारिका गए। वहां शारदा मठ के श्रीमान् शंकराचार्य जी के अतिथि बने। यहां से मांडवी, भुज, पालिताना आदि स्थानों पर पर्यटन करते हुए आप बड़ौदा पहुंच गए। बड़ौदा में कुछ दिन रहने के बाद आप बम्बई और पूना भी गए। पूना में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से भेंट हुई। पूना से मैसूर के लिए चल पड़े। मैसूर में राज्य के महाराज और दीवान ने खूब सत्कार किया। मैसूर से चलते समय मैसूर-नरेश नेकुछ दक्षिणा स्वामीजी को अर्पण की। स्वामीजी बोले—

"महाराज, मैं संन्यासी हूं, धन-दौलत का मेरे लिए कोई उपयोग नहीं। यह धन गरीबों में बांट दीजिए।"

महाराज से विदा लेकर स्वामीजी सेतुबंध

रामेश्वरम् के पास समुद्र की एक चट्टान पर ध्यान करते हुए

रामेश्वर गए । वहां समुद्र में कुछ दूर तैरकर सामने की एक चट्टान पर पहुंचकर उन्होंने कुछ ध्यान किया । अब उनकी स्मृति में वहां एक सुन्दर मंदिर बन गया है ।

रामेश्वर से आप पाण्डिचेरी भी गए । वहां मद्रास सरकार के एक ऊंचे अधिकारी श्रीमन्मथनाथ भट्टाचार्य से आपकी भेंट हो गई । भट्टाचार्य के निमंत्रण पर आप मद्रास पहुंचे ।

मद्रास में बहुत से युवक आपके प्रवचन सुनने के लिए एकत्र होते थे, उनमें से बहुत से आपके अनन्य भक्त बन गए । मद्रास ईसाई कालेज के एक अध्यापक श्रीयुत सिंगराबेलू मुदलियार महाशय नास्तिक थे । धर्म और ईश्वर पर उनकी आस्था नहीं थी । एक दिन स्वामी-जी के साथ वाद-विवाद करते-करते उनका मन परिवर्तन हो गया । उसी दिन से वे आस्तिक बन गए और स्वामीजी के भक्त भी ।

इन्हीं दिनों अमेरिका के कुछ धर्म-धुरन्धरों की ओर से शिकागो में विश्व-भर के विभिन्न धर्मों की परिषद् होने की घोषणा की गई । परिषद् का उद्देश्य विभिन्न धर्मों के विविध मंतव्यों का एक साथ समन्वय करना था । प्रत्येक धर्म की ओर से कुछ प्रतिनिधि आनेवाले थे, जिनका काम अपने धार्मिक विश्वासों की व्याख्या परिषद् के सम्मुख करना था ।

स्वामीजी के शिष्यों ने उनसे इस परिषद् में भाग लेने का आग्रह किया। स्वामीजी हिंदू-शास्त्र के विद्वान् होने के साथ अंग्रेज़ी के भी पण्डित थे। हिंदू-धर्म के प्रतिनिधित्व के लिए उनसे अच्छा आदमी नहीं मिल सकता था।

अपने भक्तों का आग्रह मानकर स्वामीजी ने शिकागो जाने की सहमति दे दी। जहाज़ 31 मई, सन् 1893 के दिन अमेरिका के लिए रवाना हो गया।

विदेशों में हिन्दू-संस्कृति का प्रचार

शिकागो पहुंचकर स्वामीजी को कुछ दिन बहुत परेशान होना पड़ा। वहां के वासियों से बहुत कम जान-पहचान थी। किसी विशेष संस्था द्वारा प्रेषित प्रतिनिधि न होने के कारण परिषद् के संचालकों ने भी आपका उचित स्वागत नहीं किया था। धन की सहायता भी बहुत परिमित थी। अमेरिका के खर्चे बहुत थे। स्वामीजी जो मार्ग-व्यय साथ में ले आए थे, वह समाप्त हो गया। इस अर्थ-समस्या को हल करने के लिए स्वामीजी ने एक उपाय सोचा। शिकागो नगर के खर्चों से बचने का यही उपाय था कि आसपास के किसी उपनगर में चले जाते। उपनगर जाने की बात सोच ही रहे थे कि एक सज्जन से भेंट हो गई। वह उन्हें अपने घर ले गया। वहां आपकी भेंट हावर्ड

यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर जे० ए० राइट से हुई। स्वामीजी की बातचीत से प्रोफेसर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने स्वामीजी से आग्रह किया कि वे आगामी सर्व-धर्म परिषद् में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व अवश्य करें। स्वामीजी ने कहा—

"किंतु मेरे पास हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि होने का कोई प्रमाण-पत्र नहीं है। मैं हिन्दू धर्म की ओर से यहां भेजा भी नहीं गया। यहां तो मैं निजी तौर पर आया हूं। अतः परिषद् के अधिकारी मुझे हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि स्वीकार नहीं करेंगे।"

प्रोफेसर ने स्वामीजी को आश्वासन दिया कि वह परिषद् के अधिकारियों को इस संबंध में पत्र लिखेगा और उन्हें हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में परिषद् में भाग लेने की अनुमति दिलवा देगा।

प्रोफेसर राइट के आश्वासन से स्वामीजी को कुछ धीरज हुआ, किंतु अर्थ-कष्ट तो वैसा ही बना था। उस दिन उपनगर से जब आप शिकागो नगर में आए तो होटल में जगह नहीं मिली। होटल वाले ने उन्हें तिरस्कार से उत्तर दिया। शिकागो की बर्फीली रात में स्वामीजी ठिठुर रहे थे। कोई अन्य आश्रय न पाकर आपने रेलवे स्टेशन की बेंच पर रात काटी। वहां से उठकर वे भूखे-प्यासे सड़क के किनारे बैठ गए। उन्होंने सोचा—'आज भगवान को मेरी मृत्यु ही अभीष्ट है।'

इसी चिन्ता में बैठे थे कि सामने से एक महिला ने उन्हें इस तरह थके-हारे बैठा देखकर अपने पास बुलाया। स्वामीजी ने अपना वृत्तांत कह सुनाया। महिला के दिल में दया आई, उसने स्वामीजी का उचित सत्कार किया।

इतने में धर्म-परिषद् आरम्भ हो गई। परिषद् में संसार-भर के धर्मों के धुरंधर वक्ता-प्रवक्ता उपस्थित थे। स्वामीजी को भी हावर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर की प्रेरणा पर परिषद् में उपस्थिति होने की अनुमति मिल गई थी। परिषद् में हिन्दू धर्म का कोई अन्य प्रतिनिधि नहीं था। अतः स्वामीजी ही हिन्दू धर्म के स्वयं मनोनीत प्रतिनिधि थे।

स्वामीजी परिषद् में उपस्थित सब प्रतिनिधियों से छोटे थे। अभी आपकी आयु केवल ३० वर्ष की थी। किसी को विश्वास नहीं होता था कि यह नवयुवक परिषद् के विद्वानों के सम्मुख कुछ भी वक्तव्य दे सकेगा। स्वामी विवेकानन्द स्वयं भी शंकित थे, क्योंकि इससे पूर्व आपने इतने विद्वानों में कभी भाषण नहीं दिया था। परिषद् में दस हज़ार से अधिक लोग उपस्थित थे।

किन्तु भाषण के प्रारम्भ में ही जब आपने अमेरिका की उपस्थित जनता को 'भाइयों और बहिनो' के नाम से सम्बोधित किया तो सब लोग इस सम्बोधन

पर मुग्ध हो गए। सभा-भवन तालियों से गूंज उठा। स्वामीजी के भाषण का आशय ही यह था कि सब धर्मों का स्रोत एक है, विश्व के सभी मनुष्य परस्पर मानव-धर्म के सूत्र में बंधे हुए भाई-बहिन हैं। धर्म या देश की भिन्नता के कारण ही उन्हें भिन्न नहीं कहा जा सकता।

आपके भाषण ने परिषद् की रूपरेखा ही बदल डाली। परिषद् की आयोजना तो हुई थी प्रत्येक धर्म की जुदा-जुदा विशेषताओं के वर्गीकरण के लिए, किन्तु स्वामी विवेकानन्द ने कान्फ्रेंस का उद्देश्य प्रत्येक धर्म के एक ही बिन्दु पर केन्द्रीकरण का बना दिया। यह उद्देश्य इतना विशाल और आकर्षक था कि न केवल परिषद् में उपस्थित प्रतिनिधियों ने एक स्वर से स्वामी विवेकानन्द की प्रतिभा को सराहा, बल्कि अमेरिका के सभी पत्रों ने भी स्वामीजी के भाषण की प्रशंसा में पृष्ठों के पृष्ठ रंग दिए। स्वामीजी के व्यक्तित्व और उनकी भाषा-शैली की चर्चा भी पत्रों में खूब ज़ोर-शोर से चल पड़ी।

न्यूयार्क हेरल्ड ने एक स्थान पर यह भी लिखा—"निस्संदेह स्वामी विवेकानन्द का स्थान धर्म-परिषद् में सबसे ऊंचा है।"

हावर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर ने जब आपका भाषण सुना तो वह आप से कह उठा——"स्वामीजी,

अमेरिका में विश्व-धर्म सम्मेलन में भाषण करते हुए

आपसे प्रमाणपत्र की पूछ करना सूर्य से उसके प्रकाशित होने का अधिकार-पत्र मांगने के बराबर मूर्खता का काम है।"

परिषद् के भाषण के बाद अमेरिका के भिन्न-भिन्न शहरों में स्वामीजी के व्याख्यानों की धूम मच गई। आपने अमेरिका के अन्य नगरों-उपनगरों में भी भ्रमण करके अनेक व्याख्यान दिए। व्याख्यानों का यह क्रम लगातार दो वर्ष तक चलता रहा। अमेरिका में दो वर्ष रहने के बाद आप लन्दन के लिए रवाना हुए। लन्दन में भी आपने बहुत शीघ्र सम्मान प्राप्त कर लिया। इंग्लैंड के धर्मप्राण व्यक्तियों ने आपका हृदय से सत्कार किया। यहीं आपका परिचय मिस मारग्रेट नोबल से हुआ, जो बाद में भगिनी निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुई। स्वामीजी के उद्देशों से प्रेरणा पाकर आपने हिन्दू धर्म की दीक्षा ली और शेष जीवन भारत में रहते हुए व्यतीत किया।

एक दिन स्वामीजी संस्कृत के अंग्रेज़ विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर से मिलने के लिए आक्सफोर्ड गए। प्रोफेसर मैक्समूर ने श्री रामकृष्ण परमहंस का नाम तो सुना ही था और उनके प्रति श्रद्धालु भी थे, उनके पट्टशिष्य से मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन उनके साथ बिताकर आप जब आक्सफोर्ड स्टेशन पर आए तो वर्षा शुरू हो गई थी। गाड़ी प्लेटफार्म पर

आ गई और आप उसमें बैठ गए तो आपने देखा, प्रोफेसर मैक्समूलर स्वयं चले आ रहे थे। स्वामीजी ने कहा--

"आपने बहुत कष्ट किया। मैं तो स्वयं आक्सफोर्ड स्टेशन पर पहुंच गया था। इस वर्षा में आप स्टेशन तक आए, इस कष्ट के लिए मैं लज्जित हूं।"

मैक्समूलर ने स्वामीजी का हाथ अपने हाथों में लेते हुए उत्तर दिया—

"स्वामीजी, रामकृष्ण परमहंस के पट्टशिष्य होने के नाते आपका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसे अवसर रोज़ नहीं आते। मुझे आपसे मिलकर अपार आनन्द हुआ। आपकी कुछ भी सहायता कर सकूंगा, तो अपने आपको कृतकृत्य मानूंगा।"

लंदन आप बहुत दिन रहे। यहां आपके बहुत से भक्त बन गए। दर्शन के लिए आनेवालों का क्रम बना ही रहता था। आप सर्व-साधारण से बड़े प्रेम से मिलते थे।

इस बहुत लम्बे प्रवास के बाद आपका स्वास्थ्य गिर गया। स्वास्थ्य-सुधार के लिए आपको स्विट्ज़रलैंड जाना पड़ा। यहां कुछ दिन रहने के बाद आप इटली, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में भी गए।

उन दिनों की एक घटना से स्वामीजी की स्मरण-शक्ति के चमत्कार का पता लगता है। जर्मनी के

प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर पाल ड्यूस ने स्वामीजी को घर बुलाया था। कुछ देर की बातचीत के बाद प्रोफेसर को बाहर जाना पड़ा। स्वामीजी एक पुस्तक के पढ़ने में मग्न हो गए। प्रोफेसर 15-20 मिनट के बाद वापस आ गया। वह स्वामीजी के पास आकर बैठ गया। स्वामीजी का ध्यान तो पुस्तक में था, उन्हें प्रोफेसर के वापस आने का और पास बैठने का पता ही न लगा। उनकी नज़र पुस्तक पर थी, पुस्तक की पृष्ठसंख्या चार सौ से कम नहीं थी, स्वामीजी बहुत जल्दी-जल्दी पुस्तक के पन्ने पलटते जाते थे। घण्टे-भर में स्वामीजी ने उस चार सौ पृष्ठों की पुस्तक का पारायण कर लिया। प्रोफेसर ड्यूस ने भी उनके पुस्तक-पाठ में विघ्न डालना उचित नहीं समझा। जब स्वामीजी पुस्तक पढ़ चुके तो प्रोफेसर ने विनोदात्मक रीति से पूछा—

"स्वामीजी ! आपने चार सौ पृष्ठ समाप्त कर लिए। इतने में तो पुस्तक के पन्ने ही पल्टे जा सकते हैं। आप पुस्तक के पन्ने पलटने में ही मग्न हो गए।"

स्वामीजी समझ गए। उन्होंने उत्तर दिया—

'मैंने पन्ने नहीं पलटे, ध्यान से पुस्तक का पाठ किया है। आप चाहें तो मैं यह भी बतला सकता हूं कि किस पृष्ठ पर कौन-से विषय की चर्चा है।"

प्रोफेसर को विश्वास न हुआ। उसने अपना

कौतूहल शान्त करने के लिए स्वामीजी से कई प्रश्न किए। स्वामीजी ने उनका ठीक-ठीक उत्तर दे दिया। प्रोफेसर के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने पूछा—

"आप में स्मरण-शक्ति का ऐसा चमत्कार है, यह मुझे मालूम नहीं था। यह सिद्धि आपको कैसे हुई? क्या इसके लिए विशेष साधना नहीं करनी पड़ती?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया——"विशेष साधना की कोई आवश्यकता नहीं, ब्रह्मचर्य के साधन से यह लाभ स्वयं हो जाता है। आप जानते ही हैं, मैं संन्यासी हूं। अतः ब्रह्मचर्य का पालन मेरे लिए आवश्यक है। आप विश्वास करें या न करें, ब्रह्मचर्य से मनुष्य की स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र होती है और वीर्यनाश से शक्ति का क्षय होता है।"

जर्मनी में कुछ दिन रहने के बाद आप फिर इंग्लैंड वापस चले गए। वहां इंग्लैंड के छोटे-छोटे शहरों में घूम-घूमकर आपने वेदान्त के सिद्धांतों का प्रचार किया। लोग आपकी भाषण-शैली से बहुत प्रभावित होते थे। अंग्रेज़ी भाषा पर आपका अधिकार देखकर स्वयं अंग्रेज़ हैरान रह जाते थे।

इस तरह चार वर्ष यूरोप व अमेरिका में हिन्दू-धर्म की विशेषताओं का प्रचार करने के बाद स्वामीजी ने स्वदेश वापस आने का निश्चय किया। आपके साथ

आपके अनेक भक्त भी भारत आने के लिए तैयार हो गए, भगिनी निवेदिता भी उनमें से एक थीं।

स्वदेश-आगमन

स्वामी विवेकानन्द ने जब इंग्लैंड से भारत आने का निश्चय किया तब तक भारत में भी आपका यश चारों ओर फैल चुका था। चार वर्ष पूर्व जब आप भारत से शिकागो गए, बहुत थोड़े लोग आपके नाम से परिचित थे। शिकागो धर्म-परिषद् और बाद में यूरोप की ख्याति ने भारतीयों के हृदय में आपके लिए बहुत ऊंचे स्थान की भावना पैदा कर दी थी। लाखों भारतीय आपके दर्शनों को उत्सुक हो गए थे। आपके वापस आने का समाचार सुनते ही वे आपके भव्य स्वागत का आयोजन करने लगे।

सीलोन की राजधानी कोलम्बो में आपका जहाज़ जब बन्दरगाह में ठहरा तभी हज़ारों लोगों ने आपके जयघोष से आकाश को गुंजा दिया। सीलोन के प्रसिद्ध नेता कुमारस्वामी ने सीलोनवासियों की ओर से आपके गले में फूलों की माला डाली। जहाज़ से उतारकर लोग आपको एक विशाल सभा में ले गए। वहां भाषण देते हुए आपने कहा—

'मैं कोई राजा-महाराजा नहीं हूं, श्रीमन्त भी नहीं हूं और कोई प्रसिद्ध नेता भी नहीं हूं। मैं तो

केवल एक ऐसा संन्यासी हूं जिसने संसारी जीवन के बंधनों से विरक्त होकर लोक-सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया है। आपने मेरे प्रति जो सम्मान दिखाया है, मैं उसे अपने व्यक्तित्व के प्रति नहीं, बल्कि हिन्दू संस्कृति के प्रति मानता हूं। आपका धर्म-प्रेम देखकर मेरा मन आनन्दित हो गया है। भारत गरीब है किंतु इस गरीबी से हमें लज्जित होने की आवश्यकता नहीं। हमारी आत्मा गरीब नहीं है, हमारी संस्कृति अब भी बहुत सम्पन्न है। अपनी संस्कृति के बल पर आज भी हम संसार के देशों के सामने अपना माथा ऊंचा कर सकते हैं।"

सीलोन में उतरते हुए स्वामीजी ने जिस स्थान पर प्रथम चरण रखे थे, उस स्थान पर रामनन्द के राजा साहब ने स्मारक बनवाकर उनके इस स्वदेशागमन की याद को अमर बना दिया।

कुछ दिनों तक सीलोन का भ्रमण करने के बाद स्वामीजी मद्रास पधारे। मद्रास हाईकोर्ट के न्यायाधीश माननीय सुब्रह्मण्यैयर की अध्यक्षता में एक स्वागत समिति बनाई गई। मद्रास के स्टेशन पर आपकी गाड़ी के लगते ही हजारों लोग आपके स्वागत को उमड़ पड़े।

वहां से चलकर आपने सभा में भाषण दिया। आपने कहा—

"आज की धर्म-रहित शिक्षा हमें जीवन के मार्ग में

बहुत सहायक नहीं होती। इस शिक्षा से हमारे युवकों के चरित्र नहीं बनते। जो शिक्षा सच्चरित्र न बनाकर दुश्चरित्र बनाने में सहायक होती है, वह त्याज्य है। जिसे अपने निर्माण व उत्कर्ष की ही चिन्ता नहीं होगी, वह देश का उत्कर्ष करने में योग नहीं दे सकता। युवकों को पुस्तक के ज्ञान की उपेक्षा चरित्र-निर्माण पर विशेष बल देना चाहिए।"

मद्रास में कुछ दिन ठहरने के बाद स्वामीजी कलकत्ता की ओर रवाना हो गए। कलकत्ता स्वामीजी का जन्मस्थान था; वहां के लोगों ने बड़े प्रेम से आपका स्वागत किया।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना

कलकत्ता पधारने के कुछ दिन बाद सर राधाकांत देव के घर में एक सभा का आयोजन हुआ। वहां राजा विजयकृष्ण ने कलकत्ता के धर्म-प्रेमी सज्जनों की ओर से स्वामीजी की सेवा में मानपत्र भेंट करते हुए आपकी स्तुति की। आपने उस मानपत्र का उत्तर देते हुए कहा—

"मैं अपने देश से दूर गया हुआ था, किन्तु मेरा मन देश में ही लगा था। मैंने मोक्ष की प्राप्ति के लिए संन्यास नहीं लिया बल्कि मानव-सेवा के लिए ही लिया है। मैं भी आप सबके साथ मिलकर यह कहता हूं,

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' अपनी जन्म भूमि मुझे अपने मोक्ष से भी अधिक प्रिय हैं।"

कलकत्ता में चालम बाज़ार के एक मकान में स्वामी जी ने निवासस्थान बनाया। आपके दर्शनों के लिए जो सैकड़ों युवक आते थे, उन्हें आप देशकार्य में योग देने का निरन्तर उत्साह देते रहते थे। स्वामीजी का कथन था—

"दुनिया में रहनेवाले मनुष्यों के जो अनेक कर्त्तव्य हैं उनमें देश-सेवा का कर्त्तव्य सबसे ऊंचा है।" स्वामीजी के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक युवकों ने आजन्म देशसेवा का व्रत ले लिया। वे संन्यासी हो गए। स्वामीजी उन्हें हर समय यही उपदेश दिया करते थे—"संन्यासी का लक्ष्य दीन-दुखियों की सेवा करना है और अपने सुखों को ठोकर मारकर मानव-जाति के कल्याण में सर्वस्व अर्पित कर देना है। जो संन्यासी ऐसा समर्पण नहीं करता, वह संन्यासी बनने का अधिकारी नहीं है।"

मानव-सेवा के इस लक्ष्य को आदर्श मानकर ही स्वामीजी ने 'श्री रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। दरिद्रनारायण की सेवा करना ही मिशन का उद्देश्य था। इस मिशन को सफल बनाने के लिए स्वामीजी ने अनथक परिश्रम किया।

मिशन तो सफलता के मार्ग पर चल पड़ा, किन्तु अनथक मेहनत ने स्वामीजी को अस्वस्थ बना दिया।

स्वास्थ्य-लाभ के लिए आपको फिर पर्वत यात्रा करनी पड़ी। इस बार आप अल्मोड़ा गए। उन दिनों मुर्शिदाबाद ज़िले में भयंकर दुष्काल पड़ा था। स्वामजी के तीन शिष्य इस दुष्काल की स्थिति का पता लगाने के लिए मुर्शिदाबाद भी गए।

अल्मोड़ा में कुछ दिन रहने के बाद आप सन् 1898 में फिर कलकत्ता पधारे। यहां कलकत्ता शहर से कुछ दूरी पर गंगा के पश्चिम किनारे, आपने बेलूर मठ की स्थापना की। बेलूर में रहकर आप युवक संन्यासियों और ब्रह्मचारियों को वेदान्त, गीता, दर्शन आदि धर्म-ग्रन्थों का अभ्यास कराते रहे। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आपको फिर पर्वत-यात्रा करनी पड़ी। इस बार दार्जिलिंग गए। इस बीच कलकत्ता में प्लेग फैल गई। सैकड़ों आदमी प्लेग के आक्रमण से मरने लगे। इस समाचार के मिलते ही आप दार्जिलिंग से कलकत्ता आ गए। प्लेग के रोगी को अकेला छोड़कर लोग जब उनसे दूर भाग जाते थे, तो स्वामीजी अपने शिष्यों-समेत वहां पहुंचकर रोगी की सेवा करते थे।

इस कार्य में आर्थिक सहायता की भी आवश्यकता थी, किन्तु आर्थिक सहायता के लिए स्वामीजी किसी के आगे हाथ पसारना अनुचित समझते थे। किसी सहयोगी ने उनसे पूछा—"स्वामीजी, पैसा कहां से आएगा और पैसे के अभाव में सेवा का काम कैसे चलेगा?"

स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया—

"पैसे की ज़रूरत होगी तो बेलूर मठ को बेचकर भी पैसा आ जाएगा। सेवा का काम पहला काम है। शहर में सैकड़ों आदमी मृत्यु के ग्रास बन रहे हैं और मैं मठ में बैठकर विश्राम करूं, यह नहीं हो सकता।"

इस उत्तर से उनके शिष्यों को सेवा कार्य में दुगुना उत्साह मिला।

बेलूर मठ के बेचने की बात अनेक उदार हृदय श्रीमन्तों ने सेवाकार्य में लाखों रुपये की भेंट चढ़ा दी। इन रुपयों से स्वामीजी ने रोगियों की सेवा के लिए निःशुल्क अस्पताल खोल दिए।

अपने जीवन-मरण की चिन्ता छोड़कर स्वामीजी तथा उनके शिष्यों ने कलकत्तावासियों की सेवा की।

उन दिनों स्वामीजी को वेदान्त में दिलचस्पी नहीं थी जितनी लोकसेवा और सामान्य मनुष्यों के दुखों को दूर करने में थी। अपने शिष्यों तथा आगन्तुकों से आप वेदांत की चर्चा न करके लोकहित की ही चर्चा किया करते थे।

एक दिन 'हितवादी' पत्र के सम्पादक पण्डित सखाराम गणेश देउस्कर अपने एक मित्र के साथ स्वामीजी के दर्शनों को आए। उनके साथ भी स्वामीजी सारे समय लोकहित की चर्चा करते रहे। विदा होते हुए उनके मित्र ने स्वामीजी से कहा—"स्वामीजी! हम

आपके पास धर्म-विषयक उपदेश सुनने आए थे। आपने तो सामान्य विषयों की चर्चा में ही सारा समय लगा दिया।"

स्वामीजी ने मंद-मंद मुस्कराते हुए कहा—"महाशय! जिस देश में हज़ारों आदमी अन्न बिना भूखे रहते हों, वहां धर्म की चर्चा गौण हो जाती है। जो धर्म भूखे मनुष्य को अन्न न दे सके और रोती हुई विधवाओं के आंसू न पोंछ सके, उसे मैं धर्म नहीं मानता।"

स्वामीजी की इस बात का प्रभाव 'हितवादी' पत्र के सम्पादक पण्डितजी पर इतना पड़ा कि उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने पत्र में चर्चा करते हुए लिखा—

"मुझे स्वामीजी की यह बात कभी नहीं भूलती जो उन्होंने उस दिन की भेंट में कही थी। उस दिन से सच्चे देश-प्रेम और सच्चे धर्म का अर्थ समझता हूं।"

पुनः विदेश यात्रा

इन तरह दो वर्ष तक निरन्तर कार्य करने के बाद स्वामीजी फिर सन् 1899 की तारीख 20 जून को अमेरिका में धर्म-प्रचार के लिए चल दिए। इस यात्रा में भगिनी निवेदिता तथा आपके गुरु भाई स्वामी तुरीयानन्द भी आपके साथ थे।

न्यूयार्क में आपकी एक भक्त महिला मिसेज़ लिगेट ने आपका अतिथि-सत्कार किया। वह उन्हें अपने घर

ले गई।

यहां से आकर न्यूयार्क में स्वामीजी ने फिर भाषण कार्य शुरू कर दिया। इस बार आप केवल भाषण ही नहीं करते थे—बल्कि जिस शहर में जाते, वहां के धर्म-प्रेमियों की सहायता से वेदांत सोसायटियों की स्थापना भी करते थे। अमेरिका के भिन्न-भिन्न शहरों—न्यूयार्क, शिकागो, केलिफोर्निया आदि में अनेक वेदांत सोसायटियां बन गईं।

कुछ दिन बाद आपको पेरिस में एक धर्म-इतिहास परिषद् में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। पेरिस जाने से पूर्व आपने जहाज़ की यात्रा में ही फ्रांसीसी भाषा का अभ्यास कर लिया और पेरिस पहुंचकर फ्रांसीसी भाषा में ही व्याख्यान दिया। इस सभा में इंग्लैंड, जर्मनी, इटली आदि देशों के अनेकानेक विचारक उपस्थित हुए थे। उन सबने स्वामीजी की अद्भुत प्रतिभा पर आश्चर्य प्रकट किया।

तीन महीने तक आप पेरिस में ही रहे और वहां वेदान्त का ही प्रचार करते रहे। उसके बाद, आप बल्गेरिया, ग्रीस, टर्की आदि देशों में गए। मिस्र की राजधानी काहिरा में भी आ पहुंचे।

वहां से आप एक दिन अचानक ही भारत को आने वाले जहाज़ पर सवार होकर बम्बई पहुंच गए। स्वागत-सत्कार के आडम्बरों से बचने के लिए आपने

भगवे वस्त्र पहन लिए थे। बम्बई से कलकत्ता जाते हुए किसी को अपने आने की सूचना भी नहीं दी और एक रात अचानक ही आप बेलूर मठ में पहुंच गए।

जीवन की कुछ घटनाएं

बंगाल के प्रसिद्ध लेखक नगेन्द्रनाथ गुप्त ने, जो स्वामीजी के साथ कई वर्षों तक घनिष्ठ संपर्क में रहे थे, अपने संस्मरण लिखते हुए स्वामीजी के जीवन की कुछ घटनाएं लिखी हैं। उनमें से दो चार ये हैं—

स्वामीजी कश्मीर से लौटकर लाहौर आए थे। लाहौर के प्लेटफार्म पर सैकड़ों लोग आपके स्वागत के लिए आए थे। जिस डिब्बे में स्वामीजी थे, उसे लोगों ने घेर लिया था। उसमें से पहले एक यूरोपियन सज्जन उतरे और बाहर खड़े हो गए, उसके बाद स्वामीजी उतरे। यूरोपियन ने झुककर स्वामीजी को प्रणाम किया। स्वामीजी ने उससे हाथ मिलाए और हंसते-हंसते उसे विदा दी। बाद में पता चला कि वह यूरोपियन भारतीय सेना का कर्नल था। इंग्लैंड में स्वामीजी के भाषणों से प्रभावित होकर उनका भक्त बन गया था।

उसी रात, जब स्वामीजी श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त के घर पर ठहरे थे तो देश की दशा की चर्चा छिड़ गई। स्वामीजी ने कहा—"देश के शिक्षित मध्यमवर्ग का

समाज अभी तक जागृत नहीं है। इससे देश का कल्याण नहीं होगा। देश का भविष्य देश के किसानों व मजदूरों के ही हाथ में है।"

एक दिन स्वामीजी ने नगेन्द्रनाथ गुप्त से कहा था—"यदि मेरी जेलयात्रा से देश का कल्याण हो सकता है, तो मैं निःसंकोच जेल जाने को तैयार हूं।" उस समय तक अभी सत्याग्रह व सविनय आज्ञा-भंग आंदोलन का सूत्रपात भी नहीं हुआ था। उस समय भी स्वामीजी इतनी कुर्बानी करने को तैयार थे।

1901 में स्वामीजी ढाका गए। ढाका के प्रख्यात ज़मींदार बाबू मोहिनीमोहन दास उन्हें अपने घर ले गए। वहां ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान किया। वहां आप श्री परमहंस के एक शिष्य साधु नाग महाशय के घर भी गए। उस समय महाशय की मृत्यु हो चुकी थी। उनकी विधवा पत्नी ने स्वामीजी का सत्कार किया। वापस आते हुए उसने एक दुपट्टा आपको भेंट किया। राजा-महाराजाओं की लाखों रुपये की भेंट को अस्वीकार कर देनेवाले स्वामीजी ने उस विधवा के ढाई गज़ के उपहार को सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वीकार ही नहीं किया उसे उसी समय सिर पर बांधकर पूरा सम्मान भी दिया।

ढाका पहुंचकर स्वामीजी का स्वास्थ्य फिर से बहुत खराब हो गया था। वायु-परिवर्तन के लिए

आपको शिलांग जाना पड़ा ।

थोड़ा स्वास्थ्य सुधरने पर स्वामीजी अपने दो जापानी मित्रों के साथ बोध गया पधारे । वहां से कुछ भक्तों के आग्रह पर आप काशी भी गए । कुछ दिन काशी रहने के बाद अपने गुरु श्रीकृष्णदेव का जन्म-उत्सव मनाने के लिए आप वापस कलकत्ता आ गए ।

कलकत्ता से बेलूर मठ पहुंचकर आपने बड़े उत्साह से उत्सव की तैयारियां शुरू कर दीं । उस उत्साह-उमंग और कार्य-तत्परता को देखकर कोई व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता था कि स्वामीजी कुछ दिनों बाद ही संसार त्याग देंगे ।

यह ईस्वी सन् 1902 को 8 जुलाई का दिन था । आज आप सबके संग पूजा करने नहीं गए । सोमवार की अमावस होने से आपने काली-पूजा करने की इच्छा प्रकट की । स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी बोधानन्द ने काली-पूजा का प्रबन्ध कर दिया । आप तीन घण्टे तक ध्यान में बैठे रहे ।

कुछ दिनों से स्वामीजी सबके संग भोजन नहीं करते थे, किन्तु आज सबके साथ मिलकर भोजन किया । भोजन के बाद आप विद्यार्थियों को शास्त्रों की शिक्षा देते थे । उस दिन आपने अपने शिष्यों को बाहर शिक्षाभ्यास के लिए भेज दिया और स्वयं हाथ में माला लेकर जाप करने लगे ।

घड़ी में रात के 9 बजे थे। माला आपके हाथ में थी। चारों ओर शान्ति थी। मुख से ओ३म नाम की ध्वनि के साथ माला फेरते जाते थे। दो-चार शिष्य थोड़ी दूर बैठे विद्याभ्यास कर रहे थे। थोड़ी देर में शिष्यों ने देखा कि माला स्वामीजी के हाथ में है, किन्तु यह घूम नहीं रही, स्वामीजी का माथा झुक गया है और चिबुक छाती से जा लगी है।

इस तरह ईश्वर के एक भक्त ने संसार का त्याग कर दिया। संसारी वस्तुओं से मोह त्याग तो वे वर्षों पूर्व कर चुके थे, आज संसार का भी त्याग कर दिया।

□

[illegible] [illegible] प्रिटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032 5842

सरल प्रेरणाप्रद जीवनियां

मेरा बचपन	6.00	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	3.00
झांसी की रानी	4.00	सरदार भगतसिंह	4.00
रवीन्द्रनाथ टैगोर	4.00	स्वामी रामतीर्थ	4.00
लाला लाजपतराय	4.00	गुरु गोविन्दसिंह	4.00
सरदार पटेल	3 00	सदाचारी बच्चे	3 00
डॉ० राजेन्द्रप्रसाद	3.00	महापुरुषों का बचपन	4.00
विनोबा भावे	3.00	वीर पुत्रियां	3.00
जवाहरलाल नेहरू	3.00	लालबहादुर शास्त्री	3.00
महात्मा गांधी	4.00	आदर्श बालक	3.00
चन्द्रशेखर आज़ाद	4.00	आदर्श देवियां	3.00
श्यामाप्रसाद मुखर्जी	3.00	सच्ची देवियां	3.00
गुरु नानकदेव	3.00	इन्दिरा गांधी	6.00
सुभाषचन्द्र बोस	3.00	भारत के महान ऋषि	3.00
शिवाजी	3.00	अच्छे बच्चे	3 00
महाराणा प्रताप	3.00	गौतम बुद्ध	3.00
चाणक्य	4.00	सम्राट् अशोक	3 00
लोकमान्य तिलक	4.00	वीर हनुमान	4.00
श्रीकृष्ण	4.00	हमारे स्वामी	4.00
स्वामी विवेकानन्द	4.00	श्री अरविन्द	3.00
गणेशशंकर 'विद्यार्थी'	4.00	वीर सावरकर	3 00
गोस्वामी तुलसीदास	4.00	महर्षि वाल्मीकि	4 00
हमारे राष्ट्रनिर्माता	5.00	महाकवि कालिदास	4.00
मीराबाई	4.00	साहसी बालक	4.00
गुरु तेगबहादुर	4.00		

शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली